www.vitragvani.com

प्रवचन नं. १७ गाथा-१४-१५ शनिवार, पौष शुक्ल ४, दिनांक १४.०१.१९६७

'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय', गाथा-१४, अन्तिम लाईन। १९ वें पृष्ठ पर (है)। इस गाथा में ऐसा कहा गया है कि जीव में कर्म से किये हुए राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, उनसे आत्मा का स्वरूप सहित नहीं है; तथापि उनसे सहित मानना, यही मिथ्यात्वभाव अनन्त संसार का बीज है। कहो, समझ में आया? तब शिष्य को प्रश्न हुआ। **आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था....** १२ वीं गाथा में तो। अन्तिम लाईन, १९ वाँ पृष्ठ। तुमने ही राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, दया, दान के भाव, जो शुभ-अशुभभाव—उन्हें जीवकृत कहा था; फिर उन्हें कर्मकृत किस प्रकार कहते हो? कहो, समझ में आया इसमें?

१२ वीं गाथा में ऐसा कहा था कि आत्मा चैतन्यस्वरूप ऐसे रागादि विकार—पुण्य-पाप के भाव को करता है। उसमें पूर्व का कर्म तो निमित्तमात्र है, निमित्तमात्र है। जो स्वयं ही पुण्य-पाप के भाव, वह सब विकारी (भाव) चैतन्यस्वरूप है—ऐसा कहा था, उस विकार के भाव को जीव करता है—ऐसा कहा। यहाँ कहा कि कर्म से किये गये विकारी भाव (-ऐसा) कहा। दोनों का मेल किस प्रकार है यह? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

उसका **उत्तर : रागादिभाव चेतनारूप हैं....** वहाँ यही कहा था। 'चित्तचिदात्मक' चेतनास्वरूप रागादि परिणाम, १२ वीं गाथा में कहा था। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा आदि का जो शुभराग और अशुभराग है, वह है तो स्वयं चेतनास्वरूप। चेतना की वर्तमान पर्याय में है; वह कहीं जड़ में नहीं है। शुभ-अशुभराग, पुण्य-पाप के भाव, वे चेतनारूप हैं; इसलिए उनका कर्ता जीव ही है। परिणमनेवाला, होनेवाला, विकाररूप कर्ता तो जीव ही है। कहीं कर्म कर्ता नहीं है। विकारी परिणाम का कर्म कर्ता नहीं है; कर्ता तो जीव है।

परन्तु यहाँ श्रद्धान करवाने के... अर्थात् अजीव से चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव तो भिन्न है, परन्तु कर्म के लक्ष्य से पुण्य-पाप का भाव / उपाधिभाव हुआ, उससे भी चैतन्यस्वरूप उस आस्रवतत्त्व से भिन्न तत्त्व है। समझ में आया? ये पुण्य और पाप के भाव जो आस्रवभाव हैं, उनसे आत्मस्वरूप भिन्न है। ऐसी **श्रद्धान करवाने के लिये मूलभूत जीव के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से...** देखो! थे तो रागादि इसके किये हुए परिणाम,

www.vitragvani.com

परन्तु वह मूलभूत स्वभाव नहीं। समझ में आया? मूलभूत जीव के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से—भगवान आत्मा का शाश्वत्-असली-टिकाऊ नित्य शुद्ध चैतन्यभाव—ऐसे शुद्ध चैतन्यभाव स्वभाव की अपेक्षा से, ये पुण्य-पाप के भावकर्म के निमित्त से होते हैं; ये कोई स्वभाव के आश्रय से नहीं होते, स्वभाव नहीं है। समझ में आया?

चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव, उसमें ये पुण्य-पाप के भाव / विकल्प नहीं है तथा उसके लक्ष्य से नहीं होते; इसलिए जीव में पुण्य-पाप के भाव उसके रूप अवस्था में कर्ता होकर परिणमता है, तथापि वे उपाधिभाव हैं, इस जीव स्वरूप की शुद्धता में वे नहीं है। ऐसे शुद्धस्वभाव की श्रद्धा कराने को, उससे रहित है—ऐसा कहा गया है। कहो, समझ में आया? ये रागादिभाव कर्म के निमित्त से होते हैं, पर के लक्ष्य से (हुई) उपाधि, कृत्रिम उपाधि है। चैतन्य का मूलस्वभाव अनादि ज्ञान और आनन्द और समरसी भाव है; उसमें ये पुण्य-पाप के भाव निमित्त के आधीन हुए कृत्रिम क्षणिक मलिनभाव है; ये शुद्धस्वभाव में नहीं है। उस शुद्धस्वभाव की श्रद्धा कराने को, उनसे सहित माने तो वह मिथ्यात्व है; उनसे रहित माने, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? कहो, यह तो समझ में आये ऐसा है। इन लड़कों को, हों! ध्यान रखने के लिये कहते हैं। न समझ में आये तो ये ध्यान न रखे। कहो, समझ में आया इसमें?

यह आत्मा है न? यह आत्मा जो है, वह तो शुद्धचैतन्य ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। आत्मा वस्तु-पदार्थ—त्रिकाल पदार्थ है, वह तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप, स्वच्छतास्वरूप ऐसे शुद्धस्वभाव का सत्व, स्वभाव का सत्व—उसका यह तत्त्व, आत्मा यह आत्मतत्त्व है। उसमें जो पुण्य-पाप के भाव, राग और द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वे सब विकारीभाव हैं। वे विकारीभाव, त्रिकाली शुद्ध स्वभावरूप आत्मा में नहीं हैं और उसके आश्रय से हुए नहीं हैं। कर्ता जीव है, परन्तु उसके आत्मा के आश्रय से हुए नहीं हैं; इसलिए वे कर्म के लक्ष्य से हुई कृत्रिम मलिन की उपाधि है। इसलिए शुद्ध स्वभाव की अपेक्षा से ये दया, दान, व्रत, पुण्य-पाप के भाव, ये परभाव हैं। समझ में आया? उस स्वभावभाव की श्रद्धा कराने को, शुभाशुभभाव परभाव है, उनसे आत्मा सहित नहीं है (-ऐसा कहते हैं।) समझ में आया?

यह मुद्दे की रकम की बात चलती है। समझ में आया इसमें? मूल रकम आत्मा

www.vitragvani.com

की ज्ञान, आनन्द और शान्ति आत्मा की मूल रकम है। कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं? और आत्मा में जो कुछ शुभ और अशुभभाव होते हैं, वे उसकी मूल रकम नहीं है। उसके मूलस्वभाव में नहीं है और उसके अन्तर स्वभाव में शुद्धता है; इसलिए उसके लक्ष्य से यह विकार नहीं होता। इसलिए मूल चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु जो आत्मा (है), उसमें कर्म के निमित्त से होनेवाला पुण्य-पाप का भाव, वह विभाव-वह परभाव; वह आत्मा के स्वभाव से भिन्न है। ऐसे परभाव को त्रिकाली स्वभाव के साथ मानना कि ये भाव मेरे हैं, इसका नाम ही अनन्त संसार का मिथ्यात्वरूपी बीज है। आहाहा! समझ में आया?

कर्म के निमित्त से होते हैं, इसलिए कर्मकृत कहा है। अब इसका दृष्टान्त देते हैं। बहुत सादी बात है और बहुत सत्य बात है। समझ में आया? तेरी भूल इतनी... 'श्रीमद्' का एक वाक्य है कि परभाव को अपना मानना और अपने को भूल जाना-इतना एक वाक्य है। वह यह है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, वह शुभ है। हिंसा, झूठ, चोरी का अशुभ है। ये दोनों परभाव हैं। इस परभाव को त्रिकाली स्वभाव में मानना और अपने शुद्ध ज्ञानस्वभाव को भूल जाना—यही महामिथ्यात्व—संसार का बीज है। कहो, समझ में आया इसमें? इसका दृष्टान्त देते हैं।

जैसे किसी मनुष्य को भूत (-व्यंतर) लगा हो.... एक बात। एक मनुष्य को भूत लगा हो। **तो वह मनुष्य उस भूत के निमित्त से नाना प्रकार की विपरीत चेष्टायें करता है।** उसमें अनेक प्रकार की चेष्टा करे, भूत के निमित्त से। भूत निमित्त है, चेष्टा होती है इसमें। **विपरीत चेष्टायें करता है। उन चेष्टाओं का कर्ता तो वह मनुष्य ही है....** भूत का निमित्त है, परन्तु चेष्टा का कर्ता तो मनुष्य ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : एकमेक न?

उत्तर : एकमेक कब था? भिन्न-भिन्न है। यह तो बताते हैं। परन्तु उसकी चेष्टा तो स्वयं करता है। भूत का निमित्त है, चेष्टा स्वयं करता है। निमित्त है वह लगा। निमित्त है—ऐसा कहा। चेष्टा द्वारा ऐसे सिर धुने और ऐसा करे और ऐसा करे। वह चेष्टा तो यह स्वयं करता है।

मनुष्य ही है परन्तु वह चेष्टायें मनुष्य का निजभाव नहीं है.... मनुष्य का

www.vitragvani.com

निजभाव नहीं है। निजभाव होवे तो सदा रहना चाहिए, वह तो होता नहीं। यदि चेष्टा निजभाव होवे—भूत के निमित्त की चेष्टा स्थायी इस मनुष्य में होवे तो भूत न हो, तब भी वह होनी चाहिए। समझ में आया? परन्तु भूत के प्रसंग में वह आया, तब उसमें वह चेष्टा और पागलपन आदि की, धुनने की चेष्टा होती है। उस चेष्टा का करनेवाला तो वह यह मनुष्य ही है। उस चेष्टा का करनेवाला वास्तव में भूत नहीं है। समझ में आया? वह चेष्टा मनुष्य का निजभाव नहीं है। निजभाव होवे तब तो सदा रहना चाहिए। वह तो कृत्रिम-भूत के समय ही होती है। होती है इसमें, करता है यह; परन्तु भूत के समय होती है। इसके अलावा नहीं होती। देखो! यह दृष्टान्त है।

इसलिए उन्हें भूतकृत कहते हैं। इसलिए चेष्टाओं को भूतकृत कहते हैं। परिणमन तो इसका है, परन्तु उसे इस अपेक्षा से भूतकृत कहा जाता है। कायम का भाव नहीं है, कायमी इसका स्वरूप नहीं है और भूत के समय होता है; इसलिए उसे भूत चेष्टा का करनेवाला भूत कहा जाता है। देखो! न्याय देखो! समझ में आया?

उसी प्रकार यह जीव.... यह तो दृष्टान्त हुआ। उसी प्रकार यह जीव, अर्थात् मनुष्य की उपमा इसे हुई, मनुष्य की। **कर्म के निमित्त से....** पहले को भूत का निमित्त था। यह कर्म एक भूतड़ा, इसके **निमित्त से नाना प्रकार विपरीत भावोंरूप....** उसमें नाना प्रकार की विपरीत चेष्टा थी। यहाँ अनेक प्रकार के विपरीत भाव—पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ, राग-द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध—ये सब विपरीतभाव। भूत के काल में की हुई मनुष्य की चेष्टायें, तथापि उन्हें भूतकृत कहते हैं, क्योंकि उतने काल में—उस प्रसंग में होती है इसलिए। वैसे ही जीव, कर्म के निमित्त से उस प्रसंग में उसे रागादि विपरीतभाव परिणमते हैं। जीव स्वयं ही राग-द्वेष और पुण्य-पापरूप अनेक विपरीतभाव (रूप परिणमता है)। विपरीत अर्थात्? शुद्ध स्वभाव चैतन्य का वीतरागी समरसी स्वरूप, उससे विपरीतभाव। शुभ और अशुभ, ये पुण्य और पाप—इन सब अनेक प्रकार के विपरीत भावोंरूप से (परिणमता है)। उसमें विपरीत चेष्टा थी, इसमें विपरीतभाव है।

किससे विपरीत है? स्थायी रहा हुआ भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्द समरसी स्वरूप शाश्वत् है उसका। उसमें कर्म के निमित्त से उस काल में विपरीतभावरूप से

www.vitragvani.com

परिणमता है; उस विपरीतभाव का कर्ता तो जीव ही है। देखो! **उन भावों का कर्ता तो जीव ही है....** जैसे उस चेष्टा का कर्ता जीव (-मनुष्य) है, वैसे आत्मा में शुभ और अशुभभाव, पुण्य-पाप के भाव (होते हैं)। जो त्रिकाल शुद्धस्वभाव, पवित्रभाव, उससे विपरीतभाव है। पुण्य-पाप के भाव (विपरीत भाव हैं)। ओहो! कितनी स्पष्टता है! ये दया, दान, व्रत परिणाम ये शुभ हैं। अब उन्हें आत्मा मानना और उनसे समकित होता है—ऐसा मानना! गज़ब बात की है या नहीं? अरे! भगवान! क्या करता है? सुलटा होकर उतरे तो तीर्थंकर होवे; उल्टा होकर उतरे तो तेतर गोत्र बाँधे या निगोद में जाए। ऐसा है यह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं—भगवान का—आत्मा का स्वभाव... मनुष्य का स्वभाव तो भूतकृत के समय ही वह चेष्टा दिखती है, वह स्थायी स्वभाव नहीं है। इसी प्रकार जीव का स्थायी स्वभाव, ये पुण्य-पाप और विपरीत भाव, वह स्थायी स्वभाव नहीं है। समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्धस्वभाव, वह स्थायी स्वभाव है। उसमें कर्म के निमित्त के प्रसंग के काल में ही उसमें शुद्धस्वभाव, उन विपरीतभाव, पुण्य-पाप के भाव, उनरूप जीव स्वयं होता है, स्वयं परिणमता है। इसलिए उसे शुभाशुभभाव का आत्मा ही कर्ता कहते हैं। अथवा... कहो, समझ में आया?

परन्तु वह जीव के निजभाव नहीं हैं.... देखो! है न? वह जीव का निजभाव नहीं है। निजभाव होवे तो सदा रहे। चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का निजभाव तो ज्ञान, शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, शुद्धता, पवित्रता—ऐसा जिसका स्थायी भाव है, वैसा यह कृत्रिम क्षण में कर्म के प्रसंग में हुआ शुभ और अशुभभाव, यह स्थायी भाव नहीं है; इसलिए यह निजभाव नहीं है। कहो, समझ में आया? **अतः उन भावों को....** स्थायी नहीं, इसलिए इन भावों को... जीव के किये हुए होने पर भी, उस-उस प्रसंग में होते हैं, इसलिए उन्हें **कर्मकृत कहते हैं।** आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह घर में लड़का ऐसा हुआ हो और स्त्री ऐसी आवे और फिर वश हो जाए न, तो उसकी माँ को भी गिने नहीं। फिर उसकी माँ कहती है—भाई! तू तो सब बहुत था परन्तु यह आयी तब से तेरे भाव सब बिगड़ गये, दरकार करता नहीं। कहते हैं या नहीं? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर का हो गया, पर का जनकर आयी, वहाँ पर का हो गया तू,

www.vitragvani.com

यह क्या हुआ तुझे? समझ में आया? ऐसा कहते हैं, हों! घर में। सुनते हैं यह। ऐ... रतिभाई! समझे न?

एक व्यक्ति ने कहा था, हों! उसकी बहू थी। वह बहू सेवा नहीं करे। थी जरा ऐसी प्रकृति की। उसको कहो—यह मेरी माँ है, मेरी जनेता है। तू तो पर की जनी आयी है, परन्तु यह मेरी माँ है। चाहे जिस प्रकार हो तो मेरे तो इसकी सेवा करनी चाहिए। मेरे सेवा किये बिना चले नहीं। उसकी बहू को कहे, हों! तुझे कदाचित् पसन्द न हो, क्योंकि प्रकृति वैसी लगे, परन्तु मेरी तो जननी है, हों! मैं नव महीने इसके गर्भ में रहा हूँ। तू इसकी जनेता नहीं, तू पर की कहीं से पैदा होकर आकर खड़ी है यहाँ अभी। इसलिए तुझे इसके प्रति प्रेम नहीं आवे, परन्तु मुझे तो (आता है)। मेरी तो माँ है। बावली होगी-पागल होगी तो भी मैं तो इसकी सेवा करूँगा। कभी लड़का ऐसा हो जाए (तो) किसी समय मारे भी, तुझे क्या हो गया? अभी तक तू मेरी अनुकूलता था, यह पर की जनी आयी वहाँ बदल गया, पर का हो गया? रतिभाई! ऐसा है यह।

इसी तरह (यहाँ) कहते हैं, भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वरूप है न प्रभु! आनन्द और ज्ञान की मूर्ति अनादि-अनन्त है। उसमें कर्म का लक्ष्य होकर तुझमें विकार हुए, वे परभाव हुए; वे तेरे हो गये? तुझे क्या हुआ यह? समझ में आया? हैं किये हुए तेरे, परन्तु वे उसके प्रसंग से हुए उपाधिभाव तेरे स्वभाव में है नहीं। वे उस काल के कृत्रिम हैं, इसलिए उन्हें कर्मकृत कहने में आता है। हैं तो तेरे, तुझसे हुए हैं, परन्तु उन्हें 'पर की जनी आयी तब से तू बिगड़ा'—ऐसा कहते हैं न? परन्तु बिगड़ा है तो यह न? पर की जनी के कारण—उसके कारण बिगड़ा नहीं, परन्तु ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? एक बात। यह विकारी परिणाम की बात की। यह विकारी परिणाम का दृष्टान्त कहा।

भगवान आत्मा चैतन्य—ऐसा चैतन्यबिम्ब ज्ञायकस्वरूप है। उसमें यह वर्तमान कृत्रिम कर्मकृत के भाव, जीव के किये हुए, तथापि कर्म निमित्त के किये हुए क्षणिक की अपेक्षा से कहकर, वह निजभाव नहीं; इसलिए उन्हें परभाव कहा और ऐसे परभाव को अपने आत्मा में माने, उसे मिथ्यादृष्टि संसार का बीज कहते हैं। आहाहा! कहो, माँगीरामजी! यह दया का भाव, इसे आत्मा के स्वभाव में अपना माने तो कहते हैं कि मिथ्यात्वभाव है।

www.vitragvani.com

अरे! अरे! चिल्ला उठे न! दया (का) भाव मिथ्यात्व नहीं, हों! रागभाव है, उसे अपने स्वभाव में मानना, मेरा मानना—इसका नाम मिथ्यात्व / संसार का भाव है। आहाहा! समझ में आया? चिल्लाते हैं अभी के कितने ही पण्डित।

भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा फरमाते हैं, वीतराग परमेश्वर हैं। भाई! मनुष्य की चेष्टायें, भूत के लगने से हुई, (वह) चेष्टा तो इसकी है, परन्तु उस क्षण का भाव त्रिकाल का, उसका नहीं, इसलिए उसे मनुष्यकृत चेष्टा होने पर भी, भूतकृत कहने में आता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा का स्वभाव स्थायी ज्ञान और आनन्द है। उसे कर्ता में विकाररूप परिणमता है, कर्म के संग में; उस परिणमन का कर्ता तो वह जीव है परन्तु उस क्षण के प्रसंग से उसमें परिणमा, इसलिए उसे कर्मकृत कहकर, परभाव कहकर, (उसे) आत्मा में जुड़ान न कराने को यह बात की जाती है। समझ में आया? ओहोहो! शुभभावसहित आत्मा मानना, कहते हैं कि वह मिथ्यात्व है—ऐसा कहते हैं यहाँ। शुभभाव या अशुभभाव, वह जीवस्वभाव में असमाहित (अर्थात्) नहीं है। नहीं है, तो भी उसे मानना, यही भवबीज है, यही प्रतिभास—ऐसा जो भास, वह भव का बीज है। समझ में आया?

दूसरी, अब स्थूल की बात करते हैं। **कर्मकृत जो नाना प्रकार की पर्याय,....** देवादि पर्यायें—गति आदि की; कर्म से हुई देवगति आदि। देवगति, मनुष्यगति आदि। **वर्ण,....** यह शरीरादि के वर्ण, **गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म,....** लो! ये कर्म सब पर। ये **देव–नारक....** कर्म ने किया हुआ। कर्म सब वापस कर्म हुआ न? देव अथवा कार्य सब बाहर के। **देव–नारक–मनुष्य–तिर्यंचशरीर,....** पर्याय में साधारण गति आदि लेना। **देव–नारक–मनुष्य–तिर्यंचशरीर,....** ये सब कर्मकृत हैं; आत्मा का स्वरूप नहीं, आत्मा ने किये हुए नहीं। वे विकारी परिणाम तो आत्मा ने किये थे। समझ में आया? विकारी परिणाम तो आत्मा ने किये थे, परन्तु कर्मकृत कहकर, स्वभाव के साथ उनका जुड़ान छुड़ाने को (कहा) कि भाई! तेरे चैतन्यस्वरूप के साथ उन भावों को जोड़ना नहीं। वे विकारीभाव / मलिनभाव (उन्हें) निर्मलभाव के साथ जोड़ना, सहित मानना, वह मिथ्यात्व है। इसलिए उनके भाव रहित आत्मा के स्वरूप को मानना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और मोक्ष का बीज है। आहाहा! यह श्रद्धा का मूल्य देखो! समझ में आया?

www.vitragvani.com

शुभ-अशुभभाव की हुई पर्याय (इसकी), तथापि त्रिकाली निजभाव नहीं, इसलिए उसे वर्तमान पर्याय के अंश को त्रिकाल के साथ मिलाने का नाम मिथ्यात्व-संसार का बीज है और उस विकार के परिणाम को—शुभ-अशुभ को त्रिकाल स्वभाव में न जोड़ना, अकेले ज्ञायकस्वभाव को अन्तर में लक्ष्य में लेना; राग के अवलम्बन बिना, राग के आश्रय बिना, राग की मदद बिना अकेले चैतन्य शुद्धस्वभाव का अन्तर आश्रय लेना, इसका नाम मोक्ष का बीज—इसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? ये तो बाहर की पर्याय है, हों! यह आत्मा ने की हुई नहीं है। आहा! **अथवा कर्मकृत....** ऐसा। उस कर्म से निमित्त होकर आयी हुई ये चीजें—गति, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श। कहो, कर्म, बाहर के कार्य, देव, नारकी, यह शरीर का संहनन। यह संहनन मेरी मजबूताई है, शरीर की मजबूताई मेरी है, यह शरीर मेरा है; वर्ण, गन्ध मेरे हैं, यह संस्थान-आकार देह का आकार मेरा है; आकार सुन्दर, सुन्दर-असुन्दर—ऐसा देह का आकार। ऐसे भेद-एक बात। उन्हें अपना मानना भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अन्तर में चेष्टा, कर्तापने का भाव कर्मकृत कहा और उस कर्मकृत यह शरीरादि की बाह्य पर्याय। इन्हें अपने चैतन्यस्वरूप में मानना—ये मेरे हैं (-ऐसा मानना), वह मिथ्यात्व—संसार का बीज है। कहो, समझ में आया इसमें?

अथवा पुत्र, मित्र,.... यह पुत्र मेरा। यह तो कर्म के निमित्त से हुई उपाधि है। आहा! यह लड़का भी मेरा नहीं? कहाँ गये हैं मगनभाई? 'राजकोट'! कहो, समझ में आया? ये लड़के-लड़कियाँ, पुत्र-पुत्री, मित्र। यह मेरा मित्र है, भाई! सही समय पर मदद में खड़ा रहे। कहते हैं कि मूढ़ हो। मित्र की अनुकूलता आयी है तो कर्म से उत्पन्न संयोग हुआ है। वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं है। उसे-मित्र को मेरा मानना, इसका नाम ही संसार का बीज-मिथ्यात्व है। आहाहा! मित्र अर्थात् क्या परन्तु? परवस्तु, कर्म से बनी परवस्तु; उसे जानना कि यह है। मुझमें मानना, वह मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। ऐई! न्यालभाई! परन्तु भाई! अच्छे लड़के पकें (होवें) वह तो अच्छेरूप से तो उन्हें मानना चाहिए या नहीं? क्या करना? कहो! बापूजी! बापूजी! करे वह 'महासुख', लो! ऐसा करे, यह भी सिर पर हाथ फेरे। लो! 'महासुख' और एक बार ऐसे निकलते थे, तब ऐसे हाथ फेरते देखा था। यह सब देखी हुई बात है, हों! पहले पाँच-सात वर्ष पहले 'महासुख' वापस जाता था, और वह भी करे—बापूजी! बापूजी! बापूजी! आपकी आज्ञा बिना... आपको ठीक पड़े ऐसे...

www.vitragvani.com

अब लो! अच्छे लड़के तो मानना या नहीं अपने? न्यालभाई! किसके लड़के? बापू! परवस्तु जगत की चीज़ है। उस पर को अपनी मानना, यही महामिथ्यात्व (है) और स्वयं अपने शुद्धस्वरूप को भूलना,... ज्ञान शुद्ध चैतन्य ज्ञाता वस्तु आत्मा है, उसे भूलना और ये मेरे हैं, ये मुझे सहायक हैं, ये मुझे सेवा करनेवाले हैं, मित्र हैं और सही समय पर खड़े रहते हैं। समझे न?

अर्धांगना स्त्री, लो! सही समय बापू! नंगे-भूखे पड़े हों, तब वह वस्त्र ढाँके, नहलावे, यह विष्ठा चली जाती तो घर की महिला हो, वह काम करे, दूसरा कौन करे? ऐ.. फूलचन्दभाई! दो महिलायें की है, दो। एक के बाद एक दोनों गयी। कहो, समझ में आया? चार-चार हो, पाँच-पाँच हो, सात हो। नहीं तुम्हारे? वह नहीं सातवीं (से विवाह किया)? सातवीं पत्नी थी घर में, देखी थी, आहार लेने गये थे। छह मर गयी। समझे न? किसकी स्त्री और किसका कोई? गज़ब की बातें! और भाई आते होंगे या नहीं इसमें? भाई मेरे या नहीं? भगवानदास जैसे भाई होवे और शोभालाल जैसे इसे भाई होवें, दोनों की कैसी स्थिति ऐसे देखो! वासुदेव और बलदेव की कैसी प्रीति होती है! ये पुत्र, मित्र इनमें सब आ गये। समझे न? भाई और सब इसमें आ गये।

मकान,.... लो! मकान। ठीक! **धन,....** ये पैसे मेरे, ये मकान मेरे। कर्म से आयी हुई सामग्री को तू तेरी माने, मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'पुण्ये वैभवो वैभवे मद और मद से दुर्गति।' परमात्मप्रकाश में आता है। पुण्य से मिले वैभव, वैभव से मद चढ़े। पाँच-पचास करोड़ हो जाए तो... आहाहा! और मद से जाए दुर्गति में। हमारे यह पुण्य न हो।—आचार्य स्वयं कहते हैं, ऐसा पुण्य हमारे नहीं चाहिए। आहाहा! पुण्य से वैभव मिले। ऐसे ढेर-ढेर ऐसे पचास-पचास करोड़, करोड़, अरब, अरब... ऐसे आहाहा! नज़र पहुँचे नहीं इतने घर में हाथी, घोड़े, बैल... ये सब क्या कहलाते हैं? रथ। आहाहा! तीन सौ जोड़े तो एक राजा के थे। तीन सौ जोड़े पैर में पहिनने के। जोड़ा समझते हो? जूते। तीन सौ जोड़ा, मर गये फिर तीन सौ जोड़ा निकले। एक के बाद एक ऐसी जोड़ चाहिए और अमुक जोड़ चाहिए और यह जोड़ चाहिए और और सबेरे में यह चाहिए और दोपहर में यह चाहिए और रात्रि को यह चाहिए, सोते समय यह चाहिए, अमुक समय यह चाहिए,

www.vitragvani.com

दिशा जाना हो तब यह चाहिए, अमुक स्त्रियाँ हों तब ऐसी चाहिए, आदमी-मित्र ऐसे बैठे हों, तब ऐसा चाहिए। अनेक प्रकार के तीन सौ जोड़े जूते। खाये जूते।

कहते हैं, यह मकान मेरा। इस मकान की वह क्या कहलाती है अन्दर की? घर प्रयोग की चीजें-फर्नीचर, फर्नीचर ऐसा लगाया हो। ऐसे हिरण के सींग और अमुक और अमुक और सिंह और... आहाहा! ऐसे बैठा हो और देखे तो यह मेरे... मूढ़ है। कर्म से बनी हुई वस्तु है। कर्म निमित्त होकर आयी हुई चीज़ है। यह कोई तेरी चीज़ है? गज़ब बात, भाई!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती को होते हैं न।

उत्तर : चक्रवर्ती को होवे तो उसकी कब है? उसके है ही नहीं। मानता नहीं। बैठा है, वहाँ यह शरीर मैं नहीं, वहाँ यह फिर कहाँ से आया? राग (मेरा) नहीं, वहाँ यह कहाँ आया आत्मा में? आहाहा! इस शुभ और अशुभरागवाला मैं नहीं; मैं तो ज्ञानानन्दस्वभाववाला हूँ। आहाहा! धन-लक्ष्मी, हीरा, माणेक, पन्ना, पैसा, नोट, धान्य सब कोठार भरे होते हैं, चावल के और... अच्छे बड़े गृहस्थ के घर में होते हैं।

धान्यादि भेद.... ये सब आदि। आदि में सब लेना, बाहर की चीज़। **इन समस्त से शुद्धात्मा प्रत्यक्ष भिन्न ही है।** इन सबसे शुद्ध भगवान प्रत्यक्ष भिन्न ही है। ये बाहर की चीज़ें कर्म से उत्पन्न हुई और यहाँ कर्म की यहाँ हुई। दो प्रकार लिये भाई! घातिकर्म के निमित्त से यहाँ हुआ विकार और अघातिकर्म से यहाँ हुआ संयोग, दोनों पर हैं—यहाँ तो ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया? दो प्रकार के कर्म है न? घाति-अघाति। घातिकर्म के निमित्त से अन्तर में कृत्रिम उपाधि होना, वह पर है। अघातिकर्म के निमित्त से मिली हुई सामग्री, वह बाहर में है, वह पर है। कहो, समझ में आया?

जिस प्रकार कोई मनुष्य.... इसके लिये दृष्टान्त देते हैं। राग-द्वेष के लिये भूत का दृष्टान्त था। **जिस प्रकार कोई मनुष्य, अज्ञानी गुरु के कहने से एकान्त झोपड़ी में बैठकर भैंसे का ध्यान करने लगा,...** यह आता है न अपने 'समयसार' कर्ताकर्म (अधिकार) ये दोनों दृष्टान्त हैं—भूत और दोनों का। **जिस प्रकार कोई मनुष्य अज्ञानी गुरु के कहने से...** अज्ञानी गुरु कहे न इसे पाड़ा (भैंसे) का ध्यान करने का! **एकान्त**

www.vitragvani.com

झोपड़ी में बैठकर भैंसे का ध्यान करने लगा,... उससे पूछा कि भाई! तुझे क्या प्रीति है? तो कहे–मुझे तो भैंस से बहुत प्रीति है। तो कहा—उसका विचार कर, जिसमें प्रीति (होगी), उसमें तेरा चित्त लग जाएगा। जिसमें तुझे प्रीति, उसमें तेरा चित्त लग जाएगा। मेरे घर में भैंस है और आधे मण दूध सबेरे और आधे मण शाम को (देती है)। एक मण दूध वह कैसा? ऐसे सली खड़ी रहे वैसा। सली समझे न? सली होती है न? घास की। तृण–तृण। तिनका। नीचे से खड़ा रहे। ऐसा दूध पके। अब तो सब समझने जैसा। पहले ऐसा पक्का दूध होता था। सली ऐसे खड़ी रहे। ऐसे डाले अन्दर तो खड़ी रहे। चिकनाहट जमी हो और ऊपर पकड़ हो जाए न ऐसे। फिर खड़ी रहे दूध में। ऐसी भैंस होवे तो प्रिय लगे या नहीं? तब कहे—तुझे वह प्रीति है न, तो उसका कर ध्यान।

अपने को भैंसे के समान विशाल शरीरवाला चिन्तवन करने लगा.... अपने को पाड़ा समान चिन्तवन करने लगा। **आकाश जितना ऊँचा सींगवाला अपने को मानकर....** आकाश जितने बड़े सींग लम्बे। **मैं इस झोंपड़ी से बाहर कैसे निकलूँगा।** लो! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

उत्तर : फल, यह इसमें तेरी प्रीति है, इसमें एकाग्र हो, बस इतना।

ऐसा सोचने लगा.... कमरे में से किस प्रकार निकलूँगा? देखा? **यदि वह अपने को भैंसा न माने तो मनुष्य स्वरूप तो स्वयं है ही।** देखा? पाड़ा न माने तो मनुष्यस्वरूप है ही।

उसी प्रकार यह जीव, मोह के निमित्त से अपने को वर्णादिक स्वरूप मानकर... देखा? शरीर के लक्ष्य में से छूटता ही नहीं, कहते हैं। शरीर मेरा, ये अवयव मेरे, चेष्टा मेरी, संहनन मेरा, आकार मेरे, मकान मेरा, पैसे मेरे—ऐसा उनमें एकाकार हो गया है कि उसमें से लक्ष्य हटाता नहीं, लक्ष्य हटाता ही नहीं। **मोह के निमित्त से अपने को वर्णादिक स्वरूप मानकर देवादि पर्यायों में अपनत्व मानता है।** लो! मैं देव आया, अब मैं मनुष्य हुआ, मैं भैंसा हुआ, लो! ठीक! मैं लड़की हो गयी, लो! लड़की हो गयी, मैं लड़की हो गयी। छोरी अर्थात् लड़की, लड़की हो गयी, लड़का हुआ। क्या

www.vitragvani.com

लड़का-लड़की ? वे तो जड़ हैं। क्या हुआ ? परन्तु इसका ध्यान / लक्ष्य वहाँ है न ! उस रूप मानो मैं—ऐसा अज्ञानी मानता है। उनसे भिन्न हो सकता नहीं। यह भी अज्ञानी ने अनादि से माना हुआ है।

मोह के निमित्त से अपने को रंग, गंध, रस **स्वरूप मानकर....** देखो ! श्लोक का आधार देना है न ? **देवादि पर्यायों में....** देखो ! यहाँ पर्याय ली। वहाँ पर्याय ली थी न ? नाना प्रकार की पर्याय। यहाँ देवादि पर्याय ली, पहले में देव, नारकी आदि शरीर लिया था। **अपनत्व...** इनमें आया मानता है। मैं इस मित्र में आया। समझ में आया ? मैं इस रंग में आया, मेरा रंग ऐसा, मैं सफेद, मेरी काठी पतली, मेरी काठी मोटी, शरीर मोटा, मेरा नाक लम्बा, मेरे कान कुण्डल जैसे, मेरी आँख हिरण की आँख जैसी। मेरा-मेरा करके पर के आकार में से भिन्न नहीं पड़ता। समझ में आया ? आत्मा तो चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द की मूर्ति है। उसमें यह परवस्तु कर्म से आयी हुई, उसके लक्ष्य में खिंचा कि मैं इसमें आया। मैं देव हुआ, मनुष्य हुआ, पशु हुआ, एकेन्द्रिय, हुआ, कन्या हुआ, पुरुष हुआ, हीजड़ा हुआ—ऐसा इसे मान बैठा। देखा ? क्या कहा ?

यह जो **मोह के निमित्त से....** मिथ्यात्व के कारण स्वयं को। देखो ! मोह निमित्त, मिथ्यात्व। **वर्णादिक स्वरूप मानकर देवादि पर्यायों में आया मानता है।** मैं देव के स्वरूप हुआ हूँ, देव हुआ। स्वर्ग के देव में, वैमानिक में मैं यह देवरूप से उत्पन्न हुआ हूँ—ऐसा मानता है। ठीक! किसी पुण्य के कारण वहाँ उत्पन्न होता है न ? स्वर्ग में मैं यह देवरूप से आया हूँ। अन्य भी कहते हैं—साहेब ! महा पुण्यवन्त (हो)। आपने पुण्य किया, हमारे स्वामीरूप से यहाँ आये। यह मानता है कि मैं देवरूप से आया हूँ। परन्तु देव, आत्मा कहाँ है ? वह तो जड़ की पर्याय है। समझ में आया ? मैं सेठरूप से आया, अब मेरी नियुक्ति वहाँ मुख्य मुनीमरूप से मुख्य हुई। सेठाईरूप से मेरी तैनाती हुई। वह तो पर है, सेठाई-फेठाई तेरी कहाँ थी उसमें ? समझ में आया ?

यदि न माने तो अमूर्तिक शुद्धात्मा तो आप बना ही बैठा है। जैसे उसमें (दृष्टान्त में) था न ? समझ में आया ? मनुष्यपना, मनुष्यस्वरूप स्वयं है ही। भैंसा न माने तो मनुष्यस्वरूप बन ही रहा है। इसी प्रकार यह परस्वरूप न माने तो जीवस्वरूप शुद्धात्मा

www.vitragvani.com

अमूर्तिक बना ही बैठा है। अमूर्तिक कहा, उस मूर्ति के सामने, मूर्त के सामने कहा। यह भी उसका ध्यान खोटा है। इस शरीररूप आया, सुन्दर आकाररूप आया, पुरुष के अवयवोंरूप आया, स्त्री के अवयवोंरूप हुआ। यह सब मूढ़ उसे आकार मानता है, भैंसा हुआ—ऐसा मानता है यह। कहो, समझ में आया इसमें? कैसी शैली से बात की है।

अजीव से भिन्न और आस्रव से भिन्न करने की बात की, लो! ये सब जीव के अतिरिक्त बाहर की चीज़ें सब अजीव, तेरे हिसाब से। ये जीव नहीं और पुण्य-पाप के भाव भी जीव नहीं, वे तो आस्रव है। दोनों से रहित है, तथापि सहित मानता है, उसका नाम मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी वे शुभभाव होते है न? दया, दान, मन्दकषाय, व्रत, अणुव्रत, महाव्रत.... मिथ्यात्व में अणुव्रत-महाव्रत होते नहीं, परन्तु यह मानता है। ऐसे शुभभाव से तो निश्चय चारित्र होता है, ऐसे शुभभाव से तो संवर-निर्जरा होती है। कहो, ऐसे शुभभाव से संवर-निर्जरा होती है। अरे...! भगवान! परन्तु शुभभाव मेरा है—ऐसा तू माने, वहाँ मिथ्यात्व का आस्रव होता है। आहा! कहो, यह समझने जैसी बात है, हों! यह तो बहुत सादी और अच्छी... कहो, शोभालालजी! स्पष्ट बात है।

यह **यदि न माने....** वह भैंसा न माने तो मनुष्य ही है। वह तो ध्यान में चढ़ गया था ऐसे आकार से, इसलिए ही माना है। ऐसे इसका लक्ष्य वहाँ चढ़ गया है, इसलिए मानता है; वरना ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। **यदि न माने तो अमूर्तिक शुद्धात्मा तो आप बना ही बैठा है।** भगवान आत्मा अरूपी। अरूपी अर्थात् अमूर्त शुद्धात्मा, अरूपी शुद्धात्मा बना ही बैठा है। वह परवस्तु-रूपीरूप कभी हुआ नहीं। उसके लक्ष्य में करके ऐसा कहता है कि मैं तो अब इसमें से कैसे निकलूँ? कैसे निकलूँ? आता है न? 'गढडावाले' नहीं आते? लुवारिया। फिर 'चुडा' में वह आया किसी दिन। 'चुडा' में बना था। एक छोटा लड़का होगा, लुहारिया ले गये होंगे। फिर वहाँ ले जाकर स्त्री से विवाह किया और सब हुआ, फिर घूमते-घूमते यहाँ 'चुड़ा' आये। वहाँ बड़े घर में लड़का, स्त्री और सब। फिर यहाँ देखकर कहे—मैं तो इस 'चुड़ा' का हूँ, इस 'चुड़ा' का था, मेरा परिवार यहाँ है। फिर उससे मिलने आये, तब कहा—यह तो हमारा है। चल भाई! (तो यह कहता है) मैं नहीं आ सकता, मेरे तो यहाँ स्त्री-पुत्र हैं। लुहारिया नहीं आते?

www.vitragvani.com

गाड़ा भर-भरकर, लोहे का काम करते हैं। ऐसे लोग पहले 'चित्तोड़' में घूमते आते थे। फिर किसी गाँव का लड़का होगा—'चुड़ा' का बनिये का, बारह वर्ष का, ले गये-उठा ले गये। बनिये को ले गये। वहाँ जाकर फिर विवाह किया, पुत्र हुआ, स्त्री हुई, सब कराया। तत्पश्चात् कितने ही वर्ष बाद यहाँ 'चुड़ा' आये। वहाँ आये तो उसे याद आया कि मैं तो इस 'चुड़ा' का हूँ, मैं तो इस बनिये का पुत्र था। मुझे यहाँ से ले गये थे। वहाँ उसके वे सब कुटुम्बी मिलने आये। (उन्होंने कहा) वापस आओ। परन्तु मेरी स्त्री, पुत्र है। समझ में आया?

इसी प्रकार जहाँ आया वहाँ यह मनुष्य शरीर मिला, पैसा मिला, मकान मिला, स्त्री-पुत्र हुए, पुत्रवधु हुई, मकान हुए, इज्जत हुई। चल बाहर। परन्तु अब किस प्रकार निकला जाए? नेमिदासभाई! कंचन और कामिनी दो में से किस प्रकार निकला जाए? पता पड़ा तो वे विचारे मिलने आये, हों! यह नहीं गया तो मिलने आये। पता पड़ा कि यह लड़का अपना है, बहुत वर्ष हो गये—पच्चीस-तीस वर्ष। हाँ, भाई! मैं हूँ तो यहाँ का, मुझे ये लोग ले गये थे। यहाँ तो इन्होंने मेरा विवाह किया है। मेरे स्त्री-पुत्र है, सब है। मुझे कुछ छोड़कर आना नहीं। ऐसे कहीं से आकर यहाँ लगा, जहाँ कुछ पैसे हुए, स्त्री हुई और पुत्र हुए (तो कहता है) यह छोड़बर मुझे कहीं बाहर नहीं जाया जाता, बापू!

यदि न माने तो अमूर्तिक शुद्धात्मा तो आप बना ही बैठा है। देखो! दो दृष्टान्त दिये। **इस प्रकार यह आत्मा कर्मजनित रागादिकभाव....** ये पुण्य के-पाप के जीव में भाव हो, विकारी भाव, कर्म के संग से हुए हैं। आत्मा के संग का वह स्वभाव नहीं है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द की मूर्ति है। सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का सूर्य है। ऐसे आत्मा में पुण्य और पाप के भाव, वे रागादिभाव, कर्मजनित हैं।

दूसरी बात—**कर्मजनित वर्णादिकभाव....** दोनों कर्मजनित। एक बाहर और एक अन्दर। **उनसे सदाकाल भिन्न है।** उनसे सदाकाल भगवान चैतन्यमूर्ति भिन्न है, पृथक् है। सदाकाल, तीनों काल लिया है न? मनुष्य तो मनुष्य ही है। समझ में आया? सदाकाल भिन्न है। लो! अब श्लोक का आधार देते हैं।

'वर्णाद्या वा राग मोहादयो वा। भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।' नीचे ***यह***

www.vitragvani.com

आत्मा, वर्णादि.... अर्थात् रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, इस शरीर का। ***और रागादि....*** अन्दर का राग और रंग वह। ***मोहादि सभी भावों से भिन्न है।*** भगवान चैतन्यस्वरूप शुद्ध आनन्द की कतली है। उससे सब विकारी परिणाम सब अत्यन्त भिन्न हैं। तथापि अनादि से अज्ञानी, ये मेरे हैं (-ऐसा मानता है) और मैं कौन हूँ—यह तो भूल गया है। इसका नाम मिथ्यादृष्टि और संसार का बीज कहते हैं। चौरासी के फल फलते हों तो इस मिथ्यात्व में से फलते हैं। कहो, समझ में आया?

तो भी... भिन्न है तो भी, **अज्ञानी जीवों को आत्मा कर्मजनित भावों से संयुक्त प्रतिभासित होता है।** स्वरूप के—चैतन्य के आनन्द और ज्ञान के स्वभाववाले भान बिना, मेरा ऐसा स्वभाव है—इसका जिसे भान नहीं, उस अज्ञानी को ये पुण्य और पाप के भाव तथा शरीरादि बाह्य—वे संयुक्त प्रतिभासित होते हैं, उस सहित भासित होता है; उनसे रहित है, तथापि सहित भासित होता है। कहो, समझ में आया? पण्डितजी की अर्थ करने की शैली भी कितनी सरस है! देखो न! गाथा साथ में मिलाकर।

'खलु सः प्रतिभासः भवबीजम्।' लो! अन्तिम टुकड़ा बाकी रहा था यह। निश्चय से वह प्रतिभास, यह भास होना। शुद्ध चैतन्यस्वभाव ज्ञानानन्द की मूर्ति में विकार / पुण्य-पाप के भाव और शरीरादि मेरे—ऐसा भास होना, इसका नाम मिथ्यात्व और संसार का बीज है। **निश्चय से यह प्रतिभास ही संसार का बीजभूत है।** वाह! समझ में आया? ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा—चैतन्य शुद्धस्वरूपी आत्मा में अज्ञानी को, ये राग-द्वेष के भाव और कर्म, शरीरादि भिन्न होने पर भी, अपने भासित होते हैं—वे भाव संयुक्त भासित होते हैं, वह प्रतिभास ही मिथ्यात्व है। समझ में आया? इसका नाम विपरीत मान्यता है। समझ में आया? यह संसार का बीज है।

भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति शुद्धस्वरूप त्रिकाली स्वभावभाव में यह पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव और शरीर, रंग आदि मेरे हैं—ऐसा प्रतिभास होना; इसके नहीं है और 'मेरे है'—ऐसा भिन्न है, उसे अभिन्न भास होना, इसका नाम ही मिथ्यात्वरूपी बीज (है)। यह चौरासी के अवतार का बीज है। आहा! संक्षिप्त और टच सत्य का स्वरूप! कहो, माँगीरामजी! अब वे तो कहे—अभी अणुव्रत और महाव्रत से-आत्मा का कल्याण होता

www.vitragvani.com

है। अणुव्रत-महाव्रत अभी मिथ्यादृष्टि के, हों! समकिती को अणुव्रत-महाव्रत का विकल्प होवे तो वह माने, इसका बड़ा विवाद। पुण्य हेय या उपादेय? भाई! समझ तो सही! क्या अपेक्षा है? श्रद्धा-अपेक्षा से सर्वथा पर ही है। वस्तु ही पर है वहाँ प्रश्न क्या?

भगवान आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान और शान्ति, आनन्द की मूर्ति (है)। उसमें यह प्रतिभास होना कि यह राग मेरा है, यह वस्तु (-आत्मा) रागसहित है, शरीर सहित है, यह वस्तु कर्मसहित है। देखो! समझ में आया? यह वस्तु कर्मसहित है—ऐसा भास, वह संसार का बीज है। और यह वस्तु, राग और शरीर और कर्म से भिन्न स्वरूप का, स्वभाव से अभिन्न—ऐसा भास होना, स्वभाव से अभिन्न—ऐसा अन्दर भास होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? इसका जरा दृष्टान्त देते हैं।

भावार्थ-जैसे समस्त वृक्षों का मूलभूत बीज है,.... समस्त वृक्षों का मूलभूत तो बीज है। जम्बू के वृक्ष का जम्बू बीज है, नीम के वृक्ष का निम्बौली बीज है। प्रत्येक का—समस्त वृक्षों का (मूल) बीज है। **वैसे ही अनन्त संसार का मूलकारण....** अनन्त संसार के परिभ्रमण का **मूलकारण कर्मजनित भावों को अपना मानना है।** आहाहा! शुभभावों का अहंकार—हमने शुभभाव किये, हमारा शुभभाव, हम पुण्यवन्त हैं, हम पापी हैं, हम मूर्ख हैं। समझ में आया? हम पण्डित हैं—इन सब कर्मजनित भावों को अपना मानना, वह संसार का बीज है, अनन्त संसार का मूलभूत बीज है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे समस्त वृक्षों का मूलभूत तो बीज है। बीज होवे तो वृक्ष उगे; इसी प्रकार अनन्त संसार का मूलकारण तो कर्म के निमित्त से हुए दो प्रकार के भाव—पुण्य-पाप के भाव और शरीरादि, ये भाव आठ कर्म में घाति-अघाति, उन्हें अपना मानना.... आहाहा! वह संसार का बीज है। **इस प्रकार अशुद्धता का कारण बताया।** लो! इस प्रकार 'कर्मकृत' शब्द कहकर अशुद्धता का कारण बतलाया और वह अशुद्धता स्वयं में मानना, यह संसार का बीज है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब, तीन—दर्शन-ज्ञान और चारित्र की व्याख्या।

गाथा - १५

आगे पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय बताते हैं –

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।।१५।।

विपरीताभिनिवेश नष्ट कर निजस्वरूप का सम्यक्ज्ञान।
निज में ही अविचल थिरता पुरुषार्थ–सिद्धि का यही उपाय।।१५।।

अन्वयार्थ : (विपरीताभिनिवेशं) विपरीत श्रद्धान का (निरस्य) नाश करके (निज–तत्त्वम्) निजस्वरूप को (सम्यक्) यथार्थरूप से (व्यवस्य) जानकर (यत्) जो (तस्मात्) अपने उस स्वरूप में से (अविचलनं) भ्रष्ट न होना (स एव) वही (अयं) इस (पुरुषार्थसिद्ध्युपायः) पुरुषार्थसिद्धि का उपाय है।

टीका : 'यत् विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यक् निजतत्त्वं व्यवस्य तत् तस्मात् अविचलनं स एव अयं पुरुषार्थसिद्ध्युपायः।' जो विपरीत श्रद्धान का नाश करके यथार्थरूप से निजस्वरूप को जानकर, फिर अपने उस स्वरूप से भ्रष्ट न होना, वही पुरुषार्थ की सिद्धि होने का उपाय है।

भावार्थ : पहले जो कहा था कि संसार की बीजभूत कर्मजनित पर्याय को आत्मरूप से–अपनेरूप जानने का नाम ही विपरीत श्रद्धान है और उसका मूल से विनाश करना ही सम्यग्दर्शन है। कर्मजनित पर्याय से भिन्न शुद्धचैतन्यस्वरूप को यथार्थतया जानना सम्यग्ज्ञान है और कर्मजनित पर्यायों से उदासीन होकर स्वरूप में अकम्प–स्थिर रहना सम्यक्चारित्र है। इन तीन भावों का समुदाय ही उस जीव के कार्य सिद्ध होने का उपाय है। दूसरा कोई उपाय सर्वथा नहीं है।।१५।।

www.vitragvani.com

गाथा १५ पर प्रवचन

पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय....

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।।१५।।

तीनों लिये—दर्शन-ज्ञान और चारित्र। विपरीत श्रद्धान, जो विपरीत श्रद्धा कही न? कि पुण्य-पाप के विकल्प, आत्मा को हैं—ऐसा मानना और बाहर की चीजें अघाति से मिली, उन्हें आत्मा की मानना, इसका नाम विपरीत अभिनिवेश / मिथ्यात्व है। उसका नाश करने का नाम सम्यग्दर्शन है। विपरीत अभिप्राय का नाश अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प और ये परवस्तुएँ मेरी—इसका नाश (होना) अर्थात् स्वभाव —शुद्धस्वभावस्वरूप मैं हूँ—ऐसी अन्तर में प्रतीति / भान होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन—विपरीत अभिप्राय के नाश का कारण है। विपरीत अभिनिवेश के नाश का कारण तो यह है। कोई राग-बाग मन्द करे और यह करे और बाहर घटावे, वह कोई विपरीत अभिनिवेश के नाश का कारण नहीं है। समझ में आया? ऐसा सिद्ध करते हैं। भाई! यह मिथ्यात्व के नाश का उपाय! बाहर को घटावे-त्याग-व्रत करे, बाहर त्यागी हो, जंगल में जंगल जाये, कि नहीं; विपरीत श्रद्धा का नाश करना। ये पुण्य-पाप के भाव मेरे और परवस्तु मेरी—इसका नाश करके अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह मैं—ऐसी अन्तर अभिप्राय में स्वभाव की दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और विपरीत अभिप्राय के नाश का उपाय है। दूसरे दो कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)